ॐ

राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

एक राम दशरथ घर डोले, एक राम घट-घट में डोले।
एक राम तिर्गुन से न्यारा, एक राम का सकल पसारा।।

वर्ष 58 मार्च–अप्रैल 2012 अंक 2

रामाश्रम सत्संग, गाज़ियाबाद

विषय -सूची

(मार्च-अप्रैल 2012)

क्रमांक			पृष्टांक
1.	पलटू साहब की वाणी	प्रार्थना	01
2.	लालाजी साहब के जीवन	दादागुरु की देन	02
3.	जन्म जन्मान्तर का संस्कार	प्रवचन गुरुदेव	07
4.	दीनता	अध्यक्षीय सदुपदेश	13
5.	भाव	सत्संगीय कर्म	19
7.	मोती या पत्थर	प्रेरक प्रसंग	20

राम ॐ संदेश

भक्ति ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

संस्थापक

ब्रह्मलीन परमसंत डा. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

संरक्षक

डा. करतार सिंह, अध्यक्ष आचार्य

रामाश्रम सत्संग (रजि.) ग़ाज़ियाबाद

वर्ष 58 ✡ द्विमासिक पत्रिका ✡ मार्च–अप्रैल 2012 ✡ अंक 02

पलटू साहब की बानी

मगन आपने ख्याल में, भाड़ परै संसार
भाड़ पड़े संसार, नाहि काहू से कामा ।
मन बच करम लगाये, जनिहो केवल रामा ।
लोक लाज कुल त्यागि जगत की बूझ बूझाई ।
निन्दा कोऊ के जाये, रही सन्तन सरनाई ।।

छोड़ि दीन्हीं संग, सुनी ना वेद पुराना ।
ठान आपनी ठानि, आन ना करिहो काना ।
पलटू संसे छूट गई, मिलिया पूरा यार ।
मगन आपने ख्याल में, भाड़ परे संसार ।

दादागुरु की देन

महात्मा रामचन्द्र जी महाराज (लालाजी साहब) के जीवन की कुछ घटनायें

संतमत की यह विशेषता सदा से चली आई है कि शिष्य का गुरु से जब आन्तरिक संबंध (निस्बत) स्थापित हो जाता है तब अप्रत्यक्ष रूप से गुरु छाया की भांति शिष्य की सदैव देख–भाल करता है। इसी संबंध के विषय में पूज्य लालाजी के जीवन के कुछ दृष्टांत दिये जाते हैं।

(1) फ़र्रुख़ाबाद में एक बार श्री लालाजी के सहपाठियों ने गंगा जी के किनारे स्वामी ब्रह्मानंद जी के आश्रम के नज़दीक पिकनिक का प्रोग्राम रखा। वहाँ पर यह लोग ज़बरदस्ती महात्मा जी को भी ले गये। खाना खाने के बाद गाना बजाना होता रहा। इसके बाद भंग घुटी और सबने पी। आपने पीने से मना किया और बड़ी नम्रता से कहा कि इसके लिए उन्हें मजबूर न करें क्योंकि किसी प्रकार का नशा न करने की प्रतिज्ञा उन्होंने अपने गुरु से कर ली है। लेकिन दोस्तों ने कुछ नहीं सुना और ज़बरदस्ती आपको रेती पर लिटा दिया। दो चार दोस्तों ने हाथ पैर पकड़ लिये और एक दोस्त (पंडित माता प्रसाद) आपकी छाती पर चढ़ बैठे और ज़बरदस्ती भंग पिलाने लगे। आपने बहुत मना किया लेकिन आख़िर बेबस होकर चुप हो गये और अपने गुरुदेव का ध्यान करने लगे।

एकाएक आपका चेहरा तमतमा उठा, एक प्रकाश चेहरे पर छा गया, चेहरा बदल गया और उस पर मूंछे और दाढ़ी मालूम होने लगी। यह देखकर पंडित माता प्रसाद घबरा उठे, छाती पर से उठ बैठे और चुपचाप आश्चर्यचकित होकर एक तरफ़ खड़े हो गये और लोगों को मना किया कि आपको मजबूर न करें। अतएव फिर आपको मजबूर नहीं किया गया और भंग नहीं पीनी पड़ी। थोड़ी देर बाद वहाँ पर स्वामी ब्रह्मानंद जी आ गये। जब सब हाल मालूम हुआ तो उन्होंने सबको फटकारा और कहा कि जिस लड़के को तुम आज झूठा नशा पिलाते हो, समय आने पर यह

संसार के प्यासे जीवों को असली नशा पिलायेगा।

शाम को सब लोग गंगा जी से घर को वापिस आये। रास्ते में क्या देखते है कि लालाजी साहब के गुरुदेव यानी हुजूर महाराज, उधर से पधार रहे हैं। महात्मा जी ने बहुत ही नम्रता से प्रणाम किया और उनके साथ टहलने के लिये चले गये और रास्ते में तमाम हाल निवेदन किया। हजूर महाराज ने कहा जो लोग परमात्मा पर भरोसा करते है उनको मदद मिलती है। पंडित माता प्रसाद ने हजूर महाराज को देखकर तुरन्त पहचान लिया कि यह तो वही महात्मा है जिनकी सूरत में जनाब लालाजी साहब का चेहरा बदल गया था।

(2) एक बार श्रीमान लालाजी साहब बहुत बीमार हो गये चलने फिरने से लाचार थे और खाट से लग गये। बीमारी के कारण आप इतने परेशान नहीं थे जितने परेशान इस वजह से थे कि अब आप हजूर साहब की सेवा में नहीं जा सकते थे। एक दिन आप डोली में बैठकर हजूर साहब की सेवा में पहुँचे और आँखों में आँसू भर लाये। हजूर साहब ने बड़े स्नेह से आपकी ओर देखा और बड़ी सहानुभूति से कहा – ''बेटे पुत्तुलाल! (हजूर महाराज लालाजी को इसी नाम से पुकारते थे) घबराओ नहीं।''

देह धरे का दंड है सब काहू को होय ।
ज्ञानी भोगे ज्ञान से मूरख भोगे रोय ।।

श्रीमान् लालाजी कहा करते थे कि उस दिन से उनकी तबियत ठीक होने लगी। कभी–कभी हजूर महाराज भी स्वयं दर्शन देने आ जाते थे। थोड़े ही दिनों में वे बिल्कुल ठीक हो गये।

(3) हजूर महाराज लालाजी साहब से उम्र भर में एक बार भी नाराज़ नहीं होने पाये। जो हजूर महाराज दिल में सोचते थे वही महात्मा जी के दिल में आ जाता था। यह प्रेम की पराकाष्ठा है और प्रकट करती है कि दोनों के दिल कितने मिले हुए थे। एक रोज़ लालाजी साहब की तबियत यह चाहती थी जो कोई उनके सामने आये उसको बेंत से मारें। दिन भर यही ख़्याल आता रहा और आप परेशान रहे। शाम को आपने

अपनी हालत हजूर महाराज से निवेदन की। उन्होंने कहा – ठीक है, आज हम नालायक लड़कों पर नाराज़ होते रहे और उनको सज़ा देते रहे और क्योंकि तुम प्रत्येक पल हमारा ध्यान करते रहते हो इसलिये तुम पर भी वह असर पड़ा।

(4) एक दिन हजूर महाराज अकेले बैठे हौज़ के किनारे पानी से खेल रहे थे और पानी को इधर–उधर उछाल रहे थे। श्रीमान लालाजी दर्शनो के लिये उपस्थित हुए। प्रणाम किया और दो मिनट बाद ही जाने की आज्ञा चाही। हजूर महाराज बहुत खुश हुए और बड़े प्यार से बोले – बेटे पुत्तुलाल, क्या बात है कि जो हम सोचते हैं वही तुम करते हो? इस वक्त हम यही चाहते थे कि तुम चले जाओ और तुमने फ़ौरन जाने की आज्ञा माँग ली। हमको यह तमन्ना हो रही थी कि एक दफ़ा तो तुमसे नाराज़ होते।

(5) श्रीमान लालाजी साहब कहा करते थे कि जो हजूर महाराज के दिल में आता था वह ज्यों का त्यों हमारे दिल में उतर जाता था। उन्होंने बताया कि यह एक सिद्धि है अगर कोई शिष्य अपने हृदय को अपने गुरु के सामने लगातार बहत्तर घंटे रखे और एक सेकण्ड के लिए भी ग़ाफिल न रहे तो यह सिद्धि आ जाती है। हमने यह सिद्धि अपनी शादी में हासिल की जब हमें अपने पिता की आज्ञा के अनुसार महफ़िल में लगातार बैठना पड़ता था। लेकिन यह अमल उसी समय हो सकता है जब शिष्य अपने गुरु में पूरी तरह से लय होने वाला हो और उसकी विचार शक्ति इतनी मज़बूत हो कि अपने ख़्याल से इतने लम्बे समय में एक सेकेण्ड के लिये भी इधर–उधर न हो।

सच तो यह है कि जब ऐसी हालत हो जाती है तभी पूरी आध्यात्मिक विद्या जो गुरु के मन में होती है शिष्य में आ जाती है। ऐसी हालत में दुई (द्वैत या दो पना) बिल्कुल मिट जाती है, प्रेम का तार जुड़ जाता है। दूरी बिल्कुल नहीं रह जाती है। जो एक सोचता है दूसरा उसको महसूस करता है। गुरु समुद्र पार बैठा हुआ शिक्षा दे रहा है और शिष्य समुद्र के इस पार बैठा हुआ उस शिक्षा को ग्रहण कर रहा है।

इसका साक्षात जग विख्यात उदाहरण विश्व धर्म सम्मेलन शिकागो में स्वामी विवेकानंद द्वारा उनके गुरुदेव रामकृष्ण परमहंस में लय होकर वह चिरस्मरणीय भाषण देने वाली घटना है। ऐसी हाल में गुरु के निर्वाण हो जाने पर शिष्य बराबर अपने गुरु से लाभान्वित (फ़ैज़याब) होता रहता है। इसी को आन्तरिक संबंध (निस्बत) कहते हैं।

प्रेम गली अति सांकरी, या में द्वै न समाहि।
जब लग 'मैं' था गुरु नहीं, अब गुरु है 'मैं' नाहि॥

(6) हमारे पूज्य गुरुदेव डा. श्री कृष्णलालजी महाराज ने स्वयं बताया था कि एक बार आप देहली में चाँदनी चौक में किसी काम से पधारे और घंटाघर से फ़तेहपुरी की तरफ़ रवाना हुए, फिर वहाँ से सब्ज़ी मंडी की तरफ़ मुड़ गये, बर्फ़खाने तक बराबर चलते गये। सेवक पीछे-पीछे साथ था। सेवक का ख़्याल था कि आप देहली इससे पहले भी पधारे होंगे। यहाँ के रास्ते को जानते होंगे और किसी ख़ास काम से इस तरफ़ को जा रहे होंगे। बर्फ़खाने पहुँचकर, जो घंटाघर के करीब डेढ़ मील की दूरी पर है, महात्मा जी ठहर गये और सेवक से पूछा-क्या तुम जानते हो कि यहाँ क्यों आया? मैंने जवाब दिया कि 'मुझे नहीं मालूम। आपने कहा - ''उन बुज़ुर्ग को देखो जो सामने जा रहे है, उनकी शक्ल व सूरत हज़ूर महाराज से बहुत मिलती है। बस उनको देखता हुआ मैं यहाँ चला आया।'' इतना कहकर नेत्रों में जल भर लाये। आपको हज़ूर महाराज से बहुत प्रेम था। उनके विषय में बहुत कम बातचीत करते थे और जब कभी बातचीत करते, सारा शरीर प्रेम के आवेश में काँपने लग जाता और बाद में आँसू आ जाते थे।

इसी तरह सेवक को आचार्य पदवी (इज़ाज़त) देते समय आप हज़ूर महाराज का ख़त पढ़ने के बाद उनकी याद करके फूट-फूटकर रोते रहे। जब कभी भी आप महाराज जी का ज़िक्र करते, हमेशा प्रेम का आवेश हो जाता यद्यपि आप बहुत ज़ब्त करने वाले थे लेकिन फिर भी उस प्रेमावेश के वेग को बर्दाश्त नहीं कर सकते थे और आँखों से आँसू छलक आते थे। कभी-कभी तो ज़ोर-ज़ोर से रोने लगते और उनकी हिचकी बँध जाती थी।

(7) महात्माजी को जो तनख़्वाह मिलती थी वह आप गुरुदेव की सेवा में भेंट कर देते थे और गुरुदेव किसी के हाथ घर भिजवा देते थे। एक बार हज़ूर महाराज के यहाँ कई रोज़ से उपवास चल रहा था, क्योंकि घर में भोजन सामग्री नहीं थी और यही हालत महात्मा जी के यहाँ थी। लालाजी के पास किसी जगह से एक मनीआर्डर के पन्द्रह रुपये आये। उनमें से दस रुपये महात्मा जी के यहाँ भिजवा दिये और पाँच रुपये अपनी धर्मपत्नी (माताजी) के पास भिजवा दिये ताकि वे घर में भोजन आदि का सामान मंगा लें।

शाम को जब आप घर आये और खाने का इन्तज़ाम न देखा तो हमारी माताजी से पूछा कि अभी तक खाना क्यों नहीं बनवाया। माताजी ने उत्तर दिया कि जो रुपया आपने भेजा था वह हमने दूसरे घर (हज़ूर महाराज के घर) भिजवा दिया, क्योंकि वहाँ ज़रूरत थी। आप यह सुनकर हँस पड़े, बहुत ख़ुश हुए और कहा, ''अच्छा किया।'' और उस रोज़ सबका उपवास ही रहा।

● ● ●

प्रवचन गुरुदेव

जन्म जन्मान्तर के संस्कार

जन्म जन्मान्तर के संस्कार भोगते–भोगते जब वे क्षीण प्रायः हो जाते हैं और संस्कारों का परदा झीना रह जाता है तो ईश्वर ऐसी आत्माओं पर कृपा करके मनुष्य चोले में भेजता है ताकि वह चैतन्य वृत्ति को विकसित कर आत्मा पर से उन झीने पर्दो को हटाकर, पवित्र निर्मल, चैतन्य बनाकर चौरासी के चक्र से बाहर निकाल दें और अपने परम पिता परमात्मा की गोद में पुनः वापस हो सकें, तथा परमशान्ति पा सकें। सच तो यह है कि हम यहाँ तजुर्बा हासिल करने के लिए भेजे गए हैं। यहाँ आकर आत्मा दुनियाँवी चीजों में फँस गई है। हम ज्यों–ज्यों दुनियाँ को अपनाते हैं रूहानियत दबती जाती है। आत्मा पर मन, बुद्धि और ख़्वाहिशात के पर्दे पड़ जाने से वह अपने आपको भूल गयी है और मन उस पर हावी हो गया है।

यह दुनियाँ मन का ही पसारा है। यहाँ के सभी जीव इस माया के सामान बन गये हैं। हम दुनियाँ की चीजों का रस लेते हैं। और उन्हीं में आनंद मानते हैं। विपरीत इसके आनंद सिर्फ आत्मा में है, चूंकि हमें उसका ज्ञान नहीं है हम इन्हीं आरज़ी सुखों को सब कुछ मान बैठे हैं। तजुर्बा करना यही है कि एक–एक चीज़ को भोगें तो पायेंगे कि कोई चीज़ न तो आनंद देने की शक्ति रखती है और न दे सकती है। जो कुछ भी थोड़ा बहुत सुख हमें मिलता है वह उन चीजों से नहीं मिलता बल्कि वह तो अपने अन्तर में मिलता है।जैसे खाने को ही लें। जब तक भूख है – उसे हम बड़े चाव से खाते हैं परन्तु भूख के मिटते ही हमें उसकी चाह नहीं रहती। अगर जबरदस्ती कुछ अधिक खा भी लिया जाये तो उसका प्रतिकूल परिणाम मिलता है, यानी शरीर अस्वस्थ हो जाता है। कभी–कभी वही खाना प्राणघातक भी हो जाता है। अगर वास्तविक आनंद खाने में ही होता तो ऐसा नहीं होना चाहिए था। यही खाना जो कभी सुख का माध्यम था अब क्यों दुख का कारण बना? दूसरा उदाहरण किसी खेल का लें। जैसे ताश खेल रहे है बड़ा आनंद आ रहा है। छोड़ने की तबियत नहीं होती। अगर

कोई छेड़–छाड़ करता है तो बुरा लगता है। उसे मना कर देते है। घंटो उसी में मशगूल रहते हैं। अगर कोई किसी सगे रिश्तेदार की बीमारी का या ऐसा ही कोई अन्य दुखद समाचार देता है, हम ताश को फेंककर भाग खड़े होते हैं। उसका सब आनंद एक तरफ धरा रह जाता है। अतः वास्तविक आनंद तो कहीं और था जिसे हम समझकर भी मानते नहीं। विषयों का आनंद तो सब काल व सब अवस्थाओं में ऐसे ही रहा है और रहेगा भी – यह क्षणिक है। स्थायी आनंद तो आत्मा में है, और वह एक रस है – उसमें घटाव बढ़ाव नहीं होगा।

हम सभी इस काल्पनिक जगत में फँसे हुए हैं और कहते हैं कि संध्या में मन नहीं लगता, फायदा नहीं होता, तो हो भी कैसे। हम चौबिसों घण्टों दुनियाँ की चिन्ता में अनवरत ढंग से रत हैं, इसी को अपना लक्ष्य मान रखा है। सृष्टि के नियमानुकूल दुनियाँ तो चलती रही है और आगे भी चलती रहेगी। यह अपनी चाल नहीं बदल सकती, न छोड़ सकती है। इसके कर्म भी हमें करने ही पड़ेंगे। पर हम सत्संगियों को चाहिये कि अपना फ़र्ज पूरा करें, तर्जुबा हासिल कर नश्वर पदार्थो से अपना सम्बंध विच्छेद करें और सारी वस्तुओं को दृढ़ता से ग्रहण करें। संत जन यह कभी नहीं कहते कि दुनियाँवी फ़र्ज न करो। फ़र्ज़ अवश्य पूरा करो एक ड्यूटी समझकर जैसे संडास में जरूरत भर को ही बैठते हो। मान लो कोई काम करना ही पड़े तो उसे करो परन्तु उसमें फलासक्ति न रखो, वर्ना संस्कार बने बगैर न रहेगा और अन्त में उन्हें भुगतना भी पड़ेगा। फल त्याग का यह भी मतलब नहीं है कि कर्म का सर्वथा परित्याग कर दो, अपितु उसे अपने इष्ट को अर्पण कर दो। भला भी उसी का और बुरा भी उसी का। अपना उसमें कुछ भी नहीं। ऐसा करते रहने से संस्कार बनना रुक जायेगा। और जब संस्कार ही नहीं रहे तो आवागमन कैसा। यही अधिकार बनना है। यह कहीं बाहर से नहीं आता और न मिलता है, सब तुम्हारे अन्दर है। मान लो कमरे की सफाई करनी है तो पहले यह आवश्यक है कि दरवाजें ठीक से बन्द कर लो, नहीं तो उसमें झाड़ू लगाओगे और दूसरी तरफ खिड़कियों और दरवाजे के रास्ते गर्दे गुबार आते रहेंगें और कमरा कभी साफ़ न हो सकेगा। इसी प्रकार हृदय रूपी कमरे को साफ करने के लिए जरूरी है कि पहले उन इन्द्रियों

पर बन्द लगावें जो संस्कार बनाती है। संस्कार बनने के कई रास्ते है – जैसे कान से शब्द को सुनकर, आँखों से देखकर, जिह्वा से स्वाद लेकर स्पर्श करके। इनमें समता लाओ। फिर सत्–असत् विवेक की कसौटी पर इन्द्रियें जन्य ज्ञान को कसो। असत् का परित्याग कर सत् को अपनाओ और वैसा ही अपना सहज स्वभाव बना लो। फिर तुम्हें संतों के संग में जाने, उनके सदभावनों को सुनने और समझने पर जन्म जन्मान्तर के दबे संस्कारों को उभारने का मौका हाथ आयेगा। जब वे संस्कार उभरे – उन्हें परमात्मा की कृपा समझकर भोग लो। जहाँ अपने को कमजोर पाओ, उनसे दुआ करो, वे तुम्हें भोगने की शक्ति देंगे। इस तरह सतत प्रयत्न करते–करते तुम अपने हृदय की सफ़ाई कर सकोगे, तब तुम्हारा अधिकार जागेगा। अपनी चेष्टा से यह कदापि नहीं हो सकता। सत्गुरु की ओट लो। उनके चरणों में अपने को समर्पण कर दो। निरन्तर उनका ध्यान करो और उन्हीं में लय हो जाओ। उनकी ही कृपा से मन मरेगा, आपा टूटेगा और आत्मसाक्षात्कार होगा। रास्ता चलने से कटता है इसको कहाँ तक खोलकर समझाया जाये। वाणी भी किसी हद तक ही जा सकती है। अनहद में तो सिर्फ आत्मा ही गम्य है, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि सब पीछे रह जाते हैं।

अभी तो हम मन के घेरे में हैं। वह हमें इन्द्रिय भोगों में फँसाये हुए है। एक के बाद दीगर वासनायें हमें चक्र से घुमा रही हैं। कभी हम बाल बच्चों में फँसे है तो कभी रिश्तेदारों में। कभी इन्हीं में सारा सुख मान रहे हैं, निगाह ऊपर को जाती ही नहीं। अगर थोड़ी देर के लिए सन्तों की सोहबत में जा बैठते है तो क्षणिक वैराग होता है, परन्तु ज्योंहि वहाँ से हटे नहीं कि माया फिर दबोच लेती है। और काल के कुचक्र में नचाने लगती है। कहाँ तो हम आये थे कि फर्ज पूरा कर तजुर्बा हासिल करें और सबसे अलहदा हो जायें, दुनियाँ के किसी झगड़े से मतलब न रखें, कहाँ इसी को सब कुछ मानकर उसी में उलझकर रह गये। जब तक दुनियाँ की कदर हमारे दिल में है, ईश्वर से प्यार नहीं होगा और न परमार्थ की कमाई हो सकेगी। हम सब खुद ही अपने को दुनियाँ में फँसाये हुए हैं। दुनियाँ तो स्वतः जड़ है – वह क्या किसी को फँसायेगी ? हम स्वयं जब तक इससे बाहर न निकलना चाहें तब तक

न तो गुरु की मदद काम देगी और न परमात्मा की। संत कभी किसी को दुनियाँ नहीं देता, बल्कि वह तो उसे उजाड़ कर जीव को ईश्वर से मिला देता है।

हम दुनियाँ में फँसे हुए हैं। हम अपना संबंध दुनियाँ से उतना ही रखें जितना कि मात्र जीने भर आवश्यक हो। वरना सबसे अलहदा हो जायें। इज़्ज़त, आबरू मान–मार्यदा, नातेदार–रिश्तेदार, सगे सम्बंधी सब दिखावे के हैं। उनका मोह जो हमें जकड़े हुए है। वही असली दुख का कारण है। मन चाहता है कि सभी उसके कहने में चलें, उसकी इज़्ज़त करें। यही मान का भरम है। इसे तोड़ दो और धर्म पर आ जाओ। न किसी से राग हो न द्वेष, बगैर पूछे किसी को राय न दो और न किसी से छेड़ छाड़ करो। सबसे अलहदगी अख्त्यार करो और इनमें से निकल भागो। जब तुम्हारे अन्दर सच्ची चाह निकलने की होगी – गुरु और ईश्वर सभी मदद के लिए आ जायेंगे तो तुम्हें खोजना नहीं पड़ेगा। वे बाहर तो नहीं है, अपितु तुम्हारे अन्दर है, हाँ तुम उन्हें पहचानते नहीं, इसीलिए मारे–मारे फिरते हो। सच्चे दिल से उसे पुकारो, मदद अवश्य मिलेगी। गुरु हमें दुनियाँ से कैसे निकालते हैं, मिसाल के तौर पर सुनो। बचपन में मुझे जुआ खेलने का तो नहीं बल्कि देखने का बड़ा शौक था। जहाँ कही जुआ खेला जाता मैं वहाँ अवश्य जाता और दिलचस्पी के साथ वहाँ घंटों समय व्यतीत करता। एक बार ऐसा हुआ कि दिवाली के दिन लालाजी मेरे यहाँ पधारे हुये थे। रात को जुआ देखने के लिए मैं बेचैन था। लालाजी जब सो गये मैं भागकर वहाँ गया जहाँ जुआ खेला जा रहा था और काफी रात तक वहाँ रहा। दूसरे दिन कहीं सड़क पर जुआ हो रहा था। मैं वहाँ भी घंटों खड़ा तमाशा देखता रहा। शाम को जब मैं सत्संग में आया तो किसी बहन ने लालाजी से कहा कि भाई साहब भी तो जुआ खेलते हैं। लालाजी ने पूछा – कौन? श्रीकृष्ण? बहन ने कहा – जी हाँ श्रीकृष्ण। उन्होंने अपना मुँह दोनों हाथों से ढाककर दहाड़े मारकर रोना शुरु किया और काफी देर तक रोते रहे। मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ बन गया, सहमा और डरा, सर झुकाए बैठा रहा। इसके बाद भी लालाजी ने मुझसे कुछ नहीं कहा लेकिन उसी के बाद मेरी वह आदत हमेशा के लिए छूट गई।

अभ्यासियों का एक महान शत्रु काम है। इन्सान के अन्दर प्रेम का माद्दा है। आमतौर पर देखा जाता है कि यह प्रेम वासनामय ही है। कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में वासना अंग उसमें समायी हुई है। मन स्वभावतः दुनियाँ का रसिया है। एक को पूरी तरह भोग भी नहीं पाता कि दूसरी चाह आ बैठती है। अतः वह प्रेम और कुछ नहीं गलीज़ है। असल प्रेम तो आत्मा का विषय है। प्रेम का दूसरा नाम ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है। जब तक मन का प्रेम आत्मा से न जुड़ेगा, सच्चा प्रेम नहीं मिल सकता। मन का लगाव आत्मा से है। वह उसी से शक्ति लेकर सब कुछ करता है धरता है। आत्मा तो स्वयं कुछ नहीं करती। मन माया का एक प्रमुख विकारी अंग है, माया देश में आत्मा पर यह हावी है और जैसा चाहता है उसे नचाता रहता है। काम शक्ति मन ही के अधीन है, एकान्त इसका सबसे बड़ा सहायक है। जहाँ तक सम्भव हो, जब तक तुम मन के स्थान पर हो, काम शक्ति को न उभरने दो। जब कभी इसका जोर हो, फौरन एकान्त का परित्याग कर दो, वर्ना यह ढेर कर देगा। सभी सत्संगी भाइयों और बहनों को ऐसी परिस्थिति में पूर्ण सतर्कता बर्तनी चाहिए। पुरुषों को किसी भी गैर स्त्री चाहे माँ ही क्यों न हो – के साथ और स्त्रियों को किसी गैर पुरुष के साथ एकान्त में होना वर्जित है। ज़रूरत के मुताबिक पुरुष अपनी धर्म पत्नी को और स्त्री अपने पति को अवश्य साथ ले लें। वरना धोखा खाना पड़ेगा। पर स्त्री गमन सबसे बड़ा अपराध है संतमत इसे क्षमा नहीं करता। ऐसा व्यक्ति संतमत से निकाल दिया जाता है। Sex का enjoyment एक दफा कर लेने के बाद, मन आसानी से वहाँ से नहीं मोड़ा जा सकता। अपनी स्त्री का भी संग duty sake होना चाहिए। अपनी तरफ से अगर इच्छा उत्पन्न हो तो उसे फौरन दबाने का प्रयत्न करना चाहिए – वरना अभ्यास ठीक नहीं हो पावेगा। यह नहीं समझते कि जिस शक्ति को व्यर्थ खोने में इतना आनंद मिलता है तो उसे बचाये रखने में कितना आनंद मिलेगा। इसी प्रकार सब इन्द्रियों को regular करो। जरूरत के मुताबिक उनका इस्तेमाल करो ताकि कम से कम शक्ति का ह्रास हो और ईश्वर से अर्जित की हुई शक्ति को ईश्वर के पथ पर लगा दो।

● ● ●

अध्यक्षीय सदुपदेश

दीनता

दीन सबन को लखत है, दीनहि लखे न कोय।
भली विचारी दीनता, नरहु देवता होय ॥
कबीर नवै सो आपको, परकों नवै न कोय।
थोरि तराजू तौलिये, नवै सो भारी होय।

संतमत में दीनता का प्रमुख स्थान है। गुरुजनों के कृपा पात्र तभी हो सकते हैं जब हम दीन बनकर उनके श्री चरणों में जाते हैं। परमात्मा संत शिरोमणि डा. श्री कृष्णलाल साहब दीनता की साक्षात मूर्ति थे। उनके पावन शब्दो में – ''संत सदा उसके दरबार में हजूरी के साथ हाज़िर रहते हैं, इसलिए वह सदा संतों में मूर्तिमान रहता है। सन्तों के चरणों में बैठने से दीनता और दीनबन्धु दोनों मिलते हैं।''

दीनता एक अद्भुत भाव है जो शब्दों में प्रकट करना असम्भव है। दीनता के मायने यह नहीं कि हम धन सम्पत्ति से हीन हो जायें। सच्चे अर्थों में इसका मतलब है कि हम अपनी ख़ुदी या अहम भाव को मिटा अपने आपको गुरु में लय कर दें। यदि हम अपने आपको दीन समझ लें तो अपना अनादर या बेइज़्ज़ती हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। इसे थोड़े में इस प्रकार समझ सकते हैं कि जब माता–पिता बच्चे को डांटते हैं तो क्या इसमें बच्चे की बेइज्जती या निरादर है। नहीं कदापि नहीं, क्योंकि बच्चा माता–पिता का प्रिय है उनके प्रति आश्रित है। आश्रित होना दीनता है। यदि हम दीन होना चाहते है तो अपने आपको सेवक समझे और मात्र सच्चे दिल से सेवा करें। कहने को तो यह सब बहुत आसान है कि साहब हम तो आपके सेवक हैं लेकिन ऐसा होना बहुत कठिन है। यह सब साधन और अभ्यास से ही संभव है।

यह बिल्कुल सही है कि संतों के चरणों में बैठने से दीनता मिलती है लेकिन जब तक ख़ुद को दीन बनाकर नहीं जायेंगे तब तक वह चीज

नहीं मिल सकती है जो मिलनी चाहिए। पहले निज कृपा फिर गुरु कृपा। पूर्ण दीनता आ जाने पर सारे सदगुण खुद ब खुद आने लगते हैं। विनम्रता दीनता का ही अंग है। समर्पण का भाव दीनता में छुपा हुआ है। जहाँ पूर्ण समर्पणता आई फिर विलय और तब आत्म साक्षात्कार में देर कहाँ? दूसरी बात दीनता आ जाने पर क्रोध स्वतः चला जाता है। क्रोध अध्यात्म के मार्ग में एक बहुत बड़ी रुकावट करता है और यदि हमारे अन्तर में क्रोध है तो फिर दीनता कैसी? हम सेवक कहलाने लायक कहाँ रहे।

जहाँ दीनता है वहाँ क्षमा करने का भाव भी साथ है। जिन महापुरुषों के अन्तर में दीनता भरी है वे कभी किसी के ऊपर क्रोध ही नहीं करेंगे। उनके अन्तर में क्षमा का भाव रहता है। सन्तों का हृदय बड़ा ही कोमल होता है। वे दूसरों के दुखों को देखकर पिघल उठते हैं और द्रवित हो पड़ते हैं। संतों को जब कोई कष्ट पहुँचाता है तो वे विनम्रता पूर्वक उनके लिए यही प्रार्थना करते है – ''हे प्रभु ! ये भूले हुए हैं। यह नहीं जानते कि हम क्या कर रहे हैं। दयामय प्रभु! इन्हें क्षमा करो। इन्हें किसी भी सुख से वंचित मत करना। इन्होंने तो मेरी मंजिल को आसान कर दिया है।'' यह है उनकी महिमा। दक्षिण भारत के महान संत एकनाथ जी प्रतिदिन गोदावरी स्नान को जाया करते थे। रास्ते में एक सराय पड़ती थी जिसमें एक पठान रहता था। एकनाथजी स्नान करते और फिर जब वापस आते वह उनपर कुल्ला कर देता। कभी कभी यह काण्ड चार पाँच बार भी होता।

पठान एक दिन जिद्द पर आ गया। संत एकनाथ जी स्नान करके लौटते तो वह कुल्ला कर देता। ऐसे बार–बार कुल्ला करता रहा और वे महापुरुष हर बार स्नान करके लौट जाते। अंत में पठान अपने कार्य पर शर्मिन्दा हुआ। बोला ''आप मुझे माफ कर दें। तोबा करता हूँ। अब किसी को तंग नहीं करूंगा। आप खुदा के सच्चे बन्दे हो। माफ कर दें मुझे।'' लेकिन एकनाथ जी की विनम्रता, दीनता और क्षमा का यह हाल था कि वे सान्त्वना दे रहे थे – इसमें क्षमा करने की क्या बात है। आपकी कृपा से मुझे आज एक सौ आठ (108) बार स्नान करने का सुअवसर मिला है।''

त्याग की भावना दीनता में दृष्टिगोचर होती है दीनता में मैं और मेरा नहीं होता है। जो कुछ मेरे पास है वो सब तेरा। यह भोग विलास के समान जो कुछ मेरे पास है वो तेरा, यह शरीर तेरा यह मन तेरा, जो कुछ है सब तेरा, तेरा, तेरा। त्याग के मायने केवल बाह्य चीजों के ही छोड़ देने से नहीं है जैसे कि लोग अक्सर कहते है कि साहब, मैंने सिगरेट पीना छोड़ दिया है मैं चाय नहीं पिऊंगा आदि आदि। सच्चे अर्थो में हमारे अन्तर में जो कलुषित भावनाएं रागद्वेष, मोह, क्रोध, कामना आदि का भरी पर्श है उनका त्याग करना है। इनके अतिरिक्त सांसारिक वस्तुओं में भी आसक्ति न हो।

जितने भी महान संत हुए है उन सबने दीनता रूपी आभूषण धारण किया है। जो दीन होगा वह सहनशील अवश्य होगा। उसे मतलब नहीं कि लोग मेरे बारे में क्या कहते हैं। सही बात तो यह है कि जिसमें दीनता पूर्णरूप से आ गयी उसने दीन (परलोक) बना लिया। दीनबन्धु को प्राप्त कर लिया।

सिक्खों के तीसरे गुरुदेव श्री अमरदेव जी दीनता की मूर्ति थे। वे अपने गुरु महाराज श्री अगंददेव जी के समधी थे और रिश्ते में में भी बड़े थे लेकिन दीनता का यह हाल था कि जाते वक्त पीठ गुरु की तरफ नहीं होने देते थे। इसे बेअदवी समझते थे। श्री अमरदास जी बूढ़े थे लेकिन दीनता की वज़ह से बड़े शौक से श्री अंगददेव जी की सेवा करते थे। एक दिन सुबह होने में कुछ देर थी। श्री अमरदेव जी बरसते पानी में ही नदी पर गये। जब गुरुद्वारे के पास पहुँचे, वे गिर पड़े लेकिन घड़े के पानी को नहीं गिरने दिया। धमाके की आवाज हुई। पास ही जुलाहे का घर था। वह बोला कोई शख्स गिरा है या कोई कुत्ता कूदा है। उसकी पत्नी बोली। इस अंधेरी रात में अमरू बेचारे के सिवाय कौन उठा होगा। वही गरीब दुखिया पानी लेने जाता है वही गिरा होगा। ये बाते किसी तरह गुरु अंगददेव जी ने सुन ली।

अमरदास जी घड़ा लेकर पहुँचे। गुरु को स्नान कराया। सुबह हुई, दरबार लगा गुरुजी ने हुक्म दिया, जुलाहिन को लाओ। वह डरती हुई आई। गुरुजी ने पूछा – भाई आज सुबह तूने क्या कहा था? 'वह कहने लगी, भगवान! मैंने तो कुछ नहीं कहा। धमाके की आवाज हुई जैसे

कोई गिरा हो। मेरी पतिदेव के पूछने पर मैंने कहा कि ऐसे अंधेरे में अमरू बेचारे के सिवाये और कौन हो सकता है। वही गरीब पानी लेने गया होगा।' यह कहकर वह चली गई। गुरुदेव का हुक्म हुआ कि अमर दास जी को हाजिर करो। वे दूसरी जगह बैठे भजन गा रहे थे, आये गुरु साहब उठे और अपने दरबारियों से कहने लगे – यह अमरू बेचारा या गरीब दुखिया नहीं है राजाओं का राजा गुरु अमरदास हैं। यह कहकर अमरदास जी को छाती से लगा लिया और अपनी गद्दी पर बिठाकर निहाल कर दिया।

लेने को सतनाम है, देने को अन्नदान ।
तरने को है दीनता, डूबन को अभिमान ॥

गुरु रामदास जी – ''जिसने अपने अहम और खुदी को मिटा दिया हो तो फिर गुरुदेव की कोई भी सेवा क्यों न हो, उसमें किसी प्रकार की हीन भावना आने का प्रश्न ही नहीं है।'' रामदास जी के बुढ़े गुरुदेव ने परीक्षा के तौर पर एक रोज़ सारे शिष्यों को अलग–अलग चबूतरा बनाने को दिया। सबने बनाया, गुरुदेव ने सबका तुड़वा दिया फिर बनाने का आदेश दिया। कई बार चबूतरे बने और बिगड़े। लोग उकता गये और कहने लगे। गुरुदेव चबूतरा बनवाते हैं और बार बार तुड़वा देते हैं। यह सोचकर उनकी आज्ञा नहीं मानी। परन्तु रामदास जी बार बार आदेशों का पालन करते रहे क्योंकि रामदास जी के अन्तर में दीनता कूट–कूट कर भरी थी। वे सेवक थे और सेवक को सिर्फ सेवा करने से मतलब है। उसे इससे कोई वास्ता नहीं कि मालिक मुझसे क्या करवा रहा है या लोग मेरे बारे में क्या सोचेंगे। आखिर गुरुदेव ने पूछा ''क्यों रामदास ? और सब तो भाग गए, तुम क्यों चबूतरा बनाते बिगाड़ते हो। क्या तुमको तकलीफ नहीं ?'' रामदास जी नम्रतापूर्वक बोले – ''भगवन, मैं सेवक हूँ, मेरा काम तो सेवा करना है, चबूतरा बने या बिगड़े मुझे इससे क्या मतलब ? मुझे तो आज्ञा पालन करने से काम है।'' अगर तमाम जिन्दगी इसी में निकल जाये तो भी मैं नहीं घबराऊंगा।'' गुरुदेव प्रेम से गदगद हो गए, आपको सीने से लगा लिया और अपना उत्तराधिकारी बनाया।

'कबीर नन्हें हो रहो, जैसो नन्हीं दूब ।
सभी घास जल जाएंगे दूब खूब की खूब ।।

जब दीनता का समावेश होता है तभी अपने अवगुण दीख पड़ते हैं दूसरे के जो नुक्स दीख पड़ते थे वे अपने अन्तर में पहले से ही मौजूद थे। इसकी साधक को खबर तक न थी।

औरों पै मुअतरज थे लेकिन नज़र जो डाली ।
अपने ही दिल को हमने गंजे अयूब देखा ।।
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न दीखा कोय ।
जो घट ढूँढा आपना, मुझसा बुरा ना कोय ।।

जब अन्तर में बुराइयाँ दीखती हैं, उनसे हम घृणा करते हैं और दीनतापूर्वक अपने गुरुदेव के श्री चरणों में गिड़गिड़ाते हैं, रोते हैं तो उन बुराइयों से छुटकारा मिल जाता है। यही वास्तविक स्वाध्याय है।

दीन पुरुष ही संतों की पवित्र दृष्टि में सबसे अधिक अधिकारी होते हैं। ऐसे ही शिष्यों के लिए गुरुजनों का यह हाल है।

दास दुखी तो मैं दुखी, आदि अंत तिहुं काल ।
पलक एक में प्रकट हो, छिन में करूँ निहाल ।।

हमें दीन भाव मानव जाति विशेष के ही साथ नहीं बल्कि परमपिता की तमाम सृष्टि के साथ बरतना है। फिर यह भी आवश्यक है कि हम व्यसनी न बने। मांस, मदिरा आदि तामसिक वस्तुओं का सेवन भूलकर भी न करें। इनसे हृदय कठोर होता है। अतः दीनता लाने के लिए यह जरूरी है कि हम हजूरी में रहें यानी यह सोचते रहे कि श्री गुरुदेव हमारे अन्तर में विराजमान है, हमारे साथ हैं, हमारे हर कार्य को देख रहे हैं। ऐसा सोचते रहने से हम बुरे कार्यो से बच सकते हैं।

पूज्य श्री लालाजी साहब (समर्थ) गुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज फतेहगढ़ी) अपने काल के सुविख्यात परमसंत थे। सूफियों की भाषा में वे पीर कामिल थे। उन्होंने भी परमेश्वर के श्री चरणों में विनम्रतापूर्वक एक जगह क्या खूब लिखा है ?

''हे परमपिता परमेश्वर! यह सेवक जैसा है तैसा आपकी शरण में मौजूद है। इसको खबर नहीं कि आपके गुण कैसे गाये जावें। कभी कभी बाखबरी पर नाज़ हो जाता है लेकिन जब काम का वक्त आता है तब धरे का धरा रह जाता है। अब तक छान–बीन करने का यह नतीजा निकला और यह जान पाया कि कुछ नहीं जाना।''

जाहिर है कि आध्यात्मिक मार्ग को सुगम बनाने के लिए दीनता की परम आवश्यकता है। पूर्ण दीनता के आते ही विनम्रता, क्षमाशीलता, राग–द्वेष से मुक्ति क्रोध और अहंकार का नाश, पूर्ण आत्मसमर्पण आदि अद्वितीय गुण साधक के अन्तर में स्वतः ही झलकने लगते हैं। इस पारलौकिक गुण को पाना निहायत ही मुश्किल है। परन्तु गुरु के चरणों का संतों के चरणों का आसरा, सहारा लेने से दीनता सुगमता से मिलेगी।

●●●

सत्संगीय कर्म

भाव

जो भाव संसारी चित्त में बसा हुआ है, जिसकी कार्यवाही के लिये साधक का मन–धन दौलत में लगा हुआ है वह मौजूद रहे और परमार्थ भी बन सके, यह नामुमकिन है। संसारी भय, भाव और चिन्ता मन से निकाल देना होगा। संसार उजाड़ देना होगा। बाहर में कार्यवाही बन्द कर देने या सब छोड़ देने के मतलब यह नहीं है। बल्कि अन्तर में, दिल में जो भाव भय और चिन्ता संसार की भरी हुई है उसको दूर कर देना होगा। अन्तर में जिस कदर संसार का भाव, भय और चिन्ता भरी हुई है उसका जरा सा असर बाहर में आता है। बाकी अन्तर में अम्बार का अम्बार भरा पड़ा है। जिसकी इस वक्त खबर भी नहीं है। जिस कदर उसको दिल से निकाला जायेगा उसी कदर अन्तर में चाल चलेगा और जब पूरा निकल जायेगा तब मालिक का प्रेम पैदा होगा और तब ही मालिक की नूरानी शक्ल के दर्शन होंगे। इसलिये उसको चाहिए कि प्रेम बाजी में संसार को दांव पर लगा दे और हाथ झाड़कर उठने को तैयार हो जाये। जब सब कुछ झाड़ देगा और हार जायेगा तब मालिक के प्रेम की दौलत और धन जो कि अपार भण्डार है, मिलेगा। मालिक के साथ ऐसा प्रेम का नाता जोड़ जो मालिक ही मिल जाये। वह भक्त जिसने मालिक के प्रेम की बाजी पर संसार को दाँव पर लगा दिया है वही ईश्वर की ज्योति की जगमगाहट के दर्शन (यानी मालिक के नूरानी रूप में दर्शन) प्राप्त कर सकेगा। दुनियाँ के त्याग से कुछ हासिल न होगा जब तक कि संसार का रस दिल में मौजूद है। मालिक के चरणों में पहुँचने के लिए अनुराग सहित वैराग होना चाहिए। जब संसार के झटके खावेगा, उनसे दुखी होकर कोई और रास्ता न पावेगा तब चित्त संसार से उदास होगा और उपरामता प्राप्त होगी। तभी इस बात की चाह पैदा होगी कि इस बात की तलाश करें कि सच्चा सुख कहाँ है और उसके पाने का क्या साधन है।

गुरु को जिस भाव से देखोगे वैसा ही लाभ होगा। मनुष्य समझोगे तो मनुष्य का सा लाभ होगा। अगर ईश्वर समझोगे तो ईश्वर का सा लाभ होगा।

सुविचारण

गुरु के रहते भी साधक गिरता है और गुरु उठाते हैं – जैसे कि साईकिल सिखलाने वाला साथ रहे तो अभ्यासी गिर-गिर पड़ता है। परन्तु एक समय वह भी आता है कि वह सन्तुलन को समझकर गीत गाता हुआ, हाथ छोड़कर साईकिल चलाता है। यहाँ तक कि चाहे तो दूसरों को भी सिखला सकता है। यों सन्प्रेरणाएं तथा सहारा देकर गुरुजन हमें बार-बार उठाते हैं। इसलिए श्रुति भगवती कहती है –

''उठो और जागो तथा बड़ों के समीप जाकर उस सूक्ष्म रहस्य को समझो। अपने स्वरूप की जिज्ञासा पर समाधान, चिन्तन और गुरुपदिष्ट रीति से मनन ही ज्ञान की दूसरी – सुविचारणां भूमिका कही जाती है।''

इस मंजिल पर पहुँचकर साधक के ज्ञान की आँखें खुल जाती हैं और प्रयास की प्रबलता का महत्व समझने लगता है। मुहब्बत की राह में तेजी से कदम उठाकर चल पड़ता है और भावी मंजिलों के लिये कटिबद्ध होकर अगली मंजिल के लिए सर्वथा प्रस्तुत हो जाता है। यह है सुविचारणा।

● ● ●

- मृत्यु के समय मनुष्य जो सबसे अंत में विचार करता है, जिसका चिन्तन करता है, उसका जन्म उसी प्रकार का होता है।

  – नारद मुनि

- जहाँ द्वैत होता है वहाँ अन्तर दिखाई देता है किन्तु जहाँ सब आत्मा ही हो गया, अन्तर समाप्त हो जाता है।

  – याज्ञवल्कय

प्रेरक प्रसंग

मोती या पत्थर

स्वामी रामतीर्थ उन दिनों लाहौर छोड़ चुके थे और ऋषिकेश में गंगा के किनारे बड़ी मस्ती में रह रहे थे। एक दिन उन्होंने एक साधू से पूछा ''बाबा आपको सन्यास लिये कितना अरसा हो गया?''

''हो गये होंगे चालीस साल लगभग'' साधू ने कहा।

''चालीस वर्ष में आपने क्या प्राप्त किया?'' स्वामीजी ने पूछा।

''इसे देखते हो'' गंगा जी दिखाते हुए अभिमानपूर्वक साधू ने कहा।

''मैं अगर चाहूँ तो इस पानी पर चलकर दूसरे छोड़ जा सकता हूँ और वापस भी आ सकता हूँ।'' साधू ने और घमंडपूर्वक कहा।

''इसके अलावा कुछ और?'' स्वामी जी ने फिर सरलता से पूछा।

अब साधू के स्वर में करवाहट आने लगी और बोला ''क्या तुम इसे आसान काम समझते हो?''

इस पर स्वामी रामतीर्थ जी मुस्कुराये और बोले ''बाबा, माफ़ करना मुझे मैं तो यही कहूँगा कि आपने चालीस साल यों ही खो दिये। नदी में नौका भी चलती है। दो आने उधर जाने के और दो आने इधर आने के लगते हैं चालिस साल में आपने केवल यही पाया, जो कोई भी आदमी चार आने खर्च करके पा सकता है। बाबा, आप अमृत के सागर में तो जरूर गये.... लेकिन मोती की जगह पत्थर उठा लाये।''

● ● ●

राम संदेश के नियम

1) आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार-शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम संदेश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।

2) राम-संदेश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट-छांट करने अथवा छापने, या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।

3) राम संदेश का वर्ष जनवरी से आरम्भ होता है। चन्दा फ़िलहाल 20/- (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। **डा. एस. के. सक्सेना, 9 नव युग मार्केट, ग़ाज़ियाबाद, उ.प्र. 201009,** के पते पर जनवरी-फ़रवरी के अंत तक अवश्य भिजवा दें।

4) पत्र व्यवहार करते समय कृपया अपना ग्राहक नम्बर लिखें और पता लिखा कार्ड या लिफ़ाफ़ा भी अवश्य भेजें। पता बदलने की सूचना, डाकघर के पिन कोड सहित निम्न पते पर :-

डा. एस. के. सक्सेना, 9 नव युग मार्केट, ग़ाज़ियाबाद, उ.प्र. 201009

कृपया तुरन्त भेज दें - अन्यथा आपकी प्रति वापस आ जाती है या 'विलीन' हो जाती है।

5) राम संदेश के समस्त ग्राहकों की प्रतियाँ बड़े ध्यान से हर बार नौएडा, सैक्टर 34 के डाकघर में पोस्ट की जाती हैं। यहाँ तक की ज़िम्मेदारी हमारी है, आगे की नहीं। यदि 1,3,5,7,9 और 11वें महीने के अंत तक भी राम संदेश की प्रति न पहुँचे तो कृपया उसकी सूचना **डा. एस. के. सक्सेना, 9 नवयुग मार्केट, ग़ाज़ियाबाद, उ.प्र. 201009,** के पते पर अवश्य दें।

राम संदेश

रजि. ऑफ़िस
9-रामकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड,
ग़ाज़ियाबाद - 201009

सम्पादकीय पता
डा. एस. के. सक्सेना
9 नवयुग मार्केट,
ग़ाज़ियाबाद, उ.प्र. 201009

PERIODICAL

ग्राहक संख्या, नाम, पता

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी-66, सैक्टर-6, नौएडा-201301